P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-11* July- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में संस्कार का महत्व

जगमीत बावा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
मूल्य व राजनीतिक विभाग,
आई.के. गुजराल पंजाब
तकनीकी विश्वविद्यालय,
जालंधर

आशुतोष
एसोसिएट प्रोफेसर एवं
विभागाध्यक्ष,
मूल्य व प्रबन्धन विभाग,
रायत इन्सटीट्यूट ऑफ
मैनेजमेंट,
रेलमाजरा

सारांश

मानव जीवन में संस्कारों का स्थान सर्वोपरि है। संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के योग्य हो जाता है। संस्कार वे रीतियाँ व क्रियाएँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं। संस्कारों से नवीन गुणों की प्राप्ति होती है। सनातन धर्म में जन्म से मृत्यु तक षोडश संस्कारों की परंपरा है जो एक मनुष्य के जीवन में शास्त्रोंक्त विधि से संपूर्ण करवाई जाती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हर एक सामान्य नागरिक के लिए प्रेरणादायक व संस्कारित करने के प्रति कार्यरत व वचनबद्ध है। संघ का प्रयास रहता है कि संस्कार–धारण स्वयम अन्तःकरण से अभिप्ररित हो। भारतीय परंपरा संस्कारों की धनी रही है व इसी कारण भारत विश्व के अग्रिम देशों में है जहां संस्कारों का महत्व मनुष्य के लिए सर्वप्रथम है। आजकल के नवीन युग में मानव भौतिकवादी बनता हुआ जहां अपनी प्राथमिकता बदल रहा है, वहीं दूसरी ओर संस्कारों के हनन से मनुष्य के व्यवहार व चरित्र में गिरावट आना तय है। उपभोक्तावाद, औद्योगीकरण, नगरीकरण भौतिकवाद युक्त वर्तमान सामाजिक परिवेश में संस्कारों के महत्व की ओर वैश्विक स्तर पर अधिक चिन्तन हुआ है, किन्तु संघ अपनी विशिष्ट सर्वसमावेशी पद्धति के आधार पर मानव परिवर्तन के कार्य में निरपवाद रूप से कार्यरत है। इस शोधपत्र में संघ द्वारा स्वचालित शाखा के माध्यम से एक कार्यकर्ता व साधारण नागरिक में संस्कारों को प्रतिष्ठित करने का वर्णन है। संघ ने ऐसे सुसंस्कारित व्यक्ति की संकल्पना की है जो समान व विश्व को शक्ति प्रदान करे।

मुख्य शब्द : राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, संस्कार, भौतिकवाद, मानव परिवर्तन ।

प्रस्तावना

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रणेता डॉक्टर केशव बलिराम हेडगेवार जो वेदपाठी ब्राह्मण कुल से सम्बद्ध थे, शिक्षा से चिकित्सक थे, सामाजिक क्षेत्र में कोलकाता में पढ़ाई के साथ अनुशीलन समिति के क्रांतिकारी रहे और नागपुर आकर काँग्रेस के सक्रिय पदाधिकारी नेता रहे।[1] यह सुस्पष्ट है कि जन्म से लेकर संघ की स्थापना तक वे पराधीन भारत के उद्धार हेतु सभी सम्भावित मार्गों का अवलम्बन कर चुके थे। अन्ततोगत्वा छोटे छोटे बालकों को साथ लेकर खुले मैदान में खेल कराने लगे और नागपुर की व्यायामशालाओं में सम्पर्क कर युवाओं को राष्ट्र जागरण के दूरगामी लक्ष्य सन्धान निमित्त सम्पर्क करने लगे। कालान्तर में शारीरिक–बौद्धिक प्रशिक्षण के एक घण्टे के दैनिक (संघी) कार्यक्रम को शाखा[2] का नाम दिया गया, जिसमें एक एक मिनट का पूर्व निर्धारण शाखा के संचालक करते हैं और अनुशासित हो कर सम्मिलित होने वाले संघ के स्वयंसेवक व्यायाम करते हैं, खेल खेलते हैं, गीत गाते हैं और चर्चा आदि करते हैं। शाखा का समारोप एक प्रार्थना से होता है, जिसमें महामङ्गलकारी मातृभूमि की सर्वविध उन्नति के लिए ईश्वर से सभी स्वयंसेवक अजेयशक्ति, शील, ज्ञान, ऊग्र वीरव्रत, ध्येयनिष्ठा जैसे पाँच गुणों की याचना करते हैं।[3] यहाँ प्रश्न आता है कि बुद्धिजीवियों, स्थापित राजनेताओं, समृद्ध नागरिकों के ''जनसमूह'' को लक्षित कर एक वृहद उद्यम करने के स्थान पर संघ प्रणेता ने इस पवित्र कार्य की धुरी ''व्यक्ति'' के गुणों के विकास को माना। जहां एक ओर बाल मन तथा तरुण तन रूपी कच्ची मिट्टी को कुम्भकारवत यथेष्ट आकार देने का प्रयास है तो वहीं दूसरी ओर परवर्ती सरसंघचालकों व कार्यकर्ताओं ने सभी आर्थिक व सामाजिक वर्ग, सभी आयु वर्ग तथा सभी मत पन्थ सम्प्रदायों के अनुयायियों को **संस्कारित** करने के लिए प्रयास किए। संस्कार शब्द का प्रयोग जैमिनि उपनयन[4] के लिए करते हैं और शबर व्याख्या में बताया है संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है।[5] तन्त्रवार्तिक के अनुसार संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं।[6] यह योग्यता दो प्रकार की होती है– पाप–मोचन से उत्पन्न योग्यता तथा नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता। संस्कारों से नवीन गुणों की प्राप्ति तथा तप से पापों या दोषों का मार्जन होता है।

सनातन धर्म या जिसे लौकिक रूप से हिन्दू धर्म भी कहते हैं उसमें गर्भाधान, पुंसवन, नामकरण, आदि षोडश संस्कारों की परम्परा है जो जन्म से मृत्यु तक एक मनुष्य के जीवन में शास्त्रोक्त विधि से सम्पूर्ण करवाई जाती हैं। महर्षि चरक के अनुसार–संस्कारो हि गुणन्तराधानमुच्यते।[7] अर्थात् वस्तु में नये गुणों का आधान करने का नाम संस्कार है। धातु विज्ञान में संस्कार की रसायनिक दृष्टि से परिभाषित होगा तो व्यक्ति में यही गुणवर्धन जिस आधार पर परिभाषित होगा वह मूलतः मानवीय मूल्य हैं। सरल शब्दों में कहें तो पदार्थ या मनुष्य में अनपेक्षित तत्वों (दुर्गुणों) का यथासम्भव निर्मूलन तथा सद्गुणों के सृजन को संस्कार कहा जा सकता है। संस्कार किसी कुल या वंश परम्परा पर ही निर्भर करते हों ऐसा नहीं है। दैत्यकुल में जन्मे हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद और ऋषि विश्रवस् के पुत्र रावण का उदाहरण हमारे सामने ही है। संस्कार प्रदान करने में मनुष्य के साथ साथ संगीत, साहित्य और कला का योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण है, जैसे अपने यहाँ एक सुभाषित में कहा ही गया है, जो आदमी संगीत, कला, साहित्य से विहीन है वह साक्षात पशु है, जिसके सींग और पूंछ नहीं है और उसका आहार घास नहीं है। ऐसे लोगों का घास न खाना पशुओं का परम भाग्य है।[8]

संघ में संस्कारों को नितान्त पौराणिक दृष्टि से व्याख्यायित या संचारित करने का प्रयास नहीं किया जाता। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कारों को यहाँ किसी विशिष्ट आयु में ही देने का प्रयास भी नहीं किया जाता। जीवनचर्या, वार्तालाप, आदि दूसरे स्वयंसेवक के लिए शिक्षा दे जाए और संस्कारित कर जाए ऐसा जीवन जीने की अपेक्षा कार्यकर्ताओं से संघ में रहती है, यानि आत्मपरीक्षण व स्व–चरित्र निर्माण से संगठन प्रारम्भ करना। संघ के ज्येष्ठ प्रचारक श्री दादराव परमार्थ इसी सन्दर्भ में कहते थे, "Begin with first person singular." [9] जीवन संस्कारित करने के लिए भाषण नहीं करना पड़ता अपितु अपना जीवन बोलना चाहिए इसके अनेकों उदाहरण संघ के स्वयंसेवकों में मिलते हैं और एक बाल स्वयंसेवक का जीवन भी अपने से अधिक आयु के स्वयंसेवक या सामान्य नागरिक के लिए प्रेरणादायक या कहें संस्कारित करने के लिए उदाहरण के रूप में देखा गया है।

संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री रमेश पतंगे ऐसा ही एक उदाहरण देते हैं, वे कहते हैं प्रभाकर नामक उनके सहपाठी स्वयंसेवक ने अंग्रेजी और गणित विषय पढ़ना प्रारम्भ किया तो दो माह बाद जब एस.एस.सी परीक्षा के परिणाम आए तो अध्यापक को विश्वास नहीं हो रहा था क्योंकि पतंगे जी अभी तक ''प्रमोट'' हो कर ही प्रत्येक वर्ष पास हो रहे थे। वे पूरा श्रेय उस सहपाठी बाल स्वयंसेवक को देते हैं।[10] "ट्यूशन–मुक्त" उस कालखण्ड में तो संघ में यह प्रथा ही थी कि विद्यार्थी स्वयंसेवक नए विद्यार्थियों की सहायता करते थे।[11] अपना जीवन उद्घाटित करते हुए श्री पतंगे बताते हैं कि उनके लिए पिताजी संस्कारों के स्रोत नहीं थे जिस कारण वे सदा उनके (श्री पतंगे के) क्रोध का पात्र बने रहे किन्तु घर के बाहर संघ और संघ के स्वयंसेवक ही उनके जीवन को संस्कारित करने में मुख्य भूमिका में रहे, यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि जिस आर्थिक व उपेक्षित सामाजिक वर्ग से वे आते थे , वहाँ दिग्दर्शकों का अभाव सामान्यतः रहता ही है।

संघ–प्रणेता ने संघकार्य करते करते पहले अपने संस्कारों की ओर ध्या। तैलंग ब्राह्मणों के विषय में सामान्य अवधारणा रही है कि वे क्रोधी स्वभाव के होते हैं।[12] डॉ हेडगेवार तैलंग ब्राह्मण वंश से थे और उनका व्यक्तिगत स्वभाव भी अति क्रोधी था। संघ स्थापना से पूर्व के उनके भाषण अति ऊग्र होते थे, जिनका वर्णन करते हुए संघ की प्रारम्भिक पीढ़ी के कार्यकर्ता स्वर्गीय श्री दादाराव परमार्थ कहते थे कि "उनके शब्द सुनकर ऐसा लगता मानो शत्रु (अंग्रेज/परकीय शासन) सामने ही खड़ा है और वह उसके ऊपर प्रबल आक्रमण कर रहे हों।[13] किन्तु कालान्तर में संघ प्रारम्भ करने के बाद उनका स्वभाव व भाषण अप्रत्याशित रूप से आक्रामकता मुक्त हो गए। व्यवहार बदलना सम्भव है किन्तु जैसा रामायण में कहा ही गया है "स्वभावो दुरतिक्रमः[14], अतः स्वभाव व्युत्क्रम लगभग असम्भव ही है जो डॉक्टर जी ने किया[15], जिससे लोकसंग्रही होने में बाधा न आए।

भारतीय परम्परा में ''ब्रेन वॉश'' या कहें मस्तिष्क प्रक्षालन नहीं होता, अपितु स्वयंसेवक स्वयं सहजता से गुणों को ग्रहण करे, यही कार्यकर्ताओं का प्रयास रहता है क्योंकि मस्तिष्क प्रक्षालन कृत्रिम प्रणाली है, बाह्य–नियंत्रित है जबकि संस्कार–धारण स्वयम अन्तःकरण से अभिप्रेरित है। मस्तिष्क प्रक्षालन में व्यक्ति साधन और संसाधन दोनों है और संस्कारों में मनुष्य साधक है[16] और संस्कार प्राप्ति उसकी स्व्यंस्फूर्त प्रेरणा है। संघ में संस्कार–प्रक्षेपण के लिए यही विचार मूल में है। संघकार्य की व्याख्या करते हुए डॉ हेडगेवार कहते थे, "संघ कुछ नहीं करेगा" और संघ से संस्कार प्राप्त किए हुए स्वयंसेवक व्यक्तिगत रूप में राष्ट्रजीवन के विभिन्न अंगों राष्ट्रोपयोगी विचारों का विकास और कार्य करेंगे।[17]

संघ का मूल कार्य केवल शाखा के माध्यम से व्यक्ति निर्माण करना है या कहें व्यक्ति को संस्कारित करना है, तदुपरान्त वह स्वयंसेवक अपने कार्यक्षेत्र में इन संस्कारों के कारण एक आदर्श गृहस्थी,कर्मचारी, व्यवसायी, नागरिक, आदि की भूमिका में राष्ट्रोपयोगी ही होगा विश्वोपयोगी ही होगा। शाखा में प्रारम्भ में कहे गए जो गुण ईश्वर से मांगे गए हैं उन्हीं में संघ के संस्कार समाहित हैं, जिनका लक्ष्य राष्ट्रीय व व्यक्तिगत चरित्र का अंकुरण है।

अजेयशक्ति

"अजय्याञ्च विश्वस्य देहीश शक्तिम्" – संघ की प्रार्थना में पहला गुण जो ईश्वर से मांगा गया है वह अजेयशक्ति है तथा प्रार्थना में इस गुण का वैशिष्ट्य है कि केवल इसकी याचना व्यक्तिगत अपने लिए है, शेष सभी गुण सर्वसमाज के लिए आकांक्षित हैं। शाखा में शारीरिक पुष्टता के महत्व को समझते हुए निश्चित एक घण्टे में अधिकांश समय व्यायाम, योगासन, खेल आदि नियत किया जाता है। संघ में पदक्रम में सबसे निचले स्तर के कार्यकर्ता "गट नायकों" की एक बैठक में दृष्टि से शारीरिक स्वास्थ्य का महत्व समझाते हुए द्वितीय संघ प्रमुख श्री माधव सदाशिव गोलवलकर उपाख्य श्री गुरुजी

अपना उदाहरण देते हुए कहते थे कि पैंसठ वर्ष की आयु तक वे प्रति वर्ष दो बार सम्पूर्ण देश भर में भोजन किए, न किए हुए गाँव गाँव में दिन रात प्रवास कर पाए जिसका कारण था उन्होंने बाल्यावस्था से आजीवन प्रतिदिन व्यायाम का अभ्यास बनाए रखा।[18] सौष्ठव शरीर की जो कल्पना संघ की प्रार्थना रचने वालों ने की थी वह संघर्ष में विजयी होने वाले की नहीं थी, अपितु ऐसे शरीर की थी जिसे देखकर कोई संघर्ष करने की कल्पना ही न कर सके। इसे ही अजेयशक्ति कहा गया है जिसका संस्कार नित्य व्यायाम और शारीरिक संघर्ष के खेलों से होता है। संघ में खेलने के लिए ही खेल नहीं हैं, अपितु खेलों के नाम–प्रकार से भी संस्कार निर्माण होता है जैसे, मैं शिवाजी, लाहौर/दिल्ली किसका, आह्वान, आदि।[19] यही कल्पना समष्टि के प्रति भी संघ के विचारकों की रही, जैसे श्रीगुरुजी ने कहा "जिस समाज में शक्ति है, उसी का जीवन अबाधित रूप से चलता है। तत्कालीन हिन्दू समाज की भीरुता के सम्बन्ध में गान्धी जी का भी कुछ ऐसा ही अनुभव था। वे कहते थे Mussalman as a rule is a bully and the Hindu as a rule is a coward.[20] डॉक्टर जी भी हिन्दू–मुसलमान दंगा शब्द सुनते ही कहते थे मुसलमान दंगा यह शब्द उपयोग में लाना चाहिए क्योंकि जो हिन्दू अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते वे "बेचारे" दंगा कहाँ से करेंगे।[21]

डॉक्टर जी के अनुसार हिन्दू मन की इस भीरुता का कारण "मैं अकेला हूँ" यह अनुभूति थी।[22] नागपुर में आए दिन सांप्रदायिक दंगे और झड़पें होती रहती थीं। संघ की स्थापना के एक वर्ष बाद जिस प्रकार का प्रत्युत्तर स्थानीय हिन्दू समाज द्वारा दंगाइयों को मिला, उसका प्रभाव ये हुआ कि आज तक वहाँ कोई पांथिक उन्माद नहीं भड़का और न ही कोई छोटी सी झड़प भी हुई।[23] संभवतः यही वह अजेयशक्ति है जिसकी कल्पना डॉक्टर जी ने व्यष्टि और समष्टि दोनों के प्रति की थी।

शील

सुशीलं जगद्येन नम्रम् भवेत् – प्रार्थना की इस पंक्ति के अनुसार समस्त जगत हमारे शील के सम्मुख नतमस्तक हो। डॉक्टर जी हिंसा तथा आत्मरक्षा में बल प्रयोग के विषय में स्पष्ट विचार रखते थे, उनका कहना था हिंसा न करना तो उत्तम है ही, किन्तु इसके लिए आत्मनाश कर लेना योग्य नहीं।[24] यहाँ संघ के विचारकों की हिन्दू संस्कार प्रदत्त उच्च वैचारिक दृष्टि का पता चलता है जिसमें विश्व को प्रेम से जीतने की संकल्पना है। बल या पराक्रम से व्यक्ति परास्त हो सकता है किन्तु आप इससे सम्मान नहीं प्राप्त कर सकते। आदर से शीश नवाना और भयाक्रान्त होकर झुकने में अन्तर है। शील का संस्कार भी शाखा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। जैसा कि डॉक्टर जी ने कहा, "हमारा आग्रह लेखन, भाषण, प्रकाशन, आदि पर न होकर सब का सब बल कार्य करने पर है।" संघ में अधिकांश समूह, सामूहिकता, साङ्घिकता आदि प्रत्येक उस तत्व, सिद्धान्त और वृत्ति पर अधिक बल दिया जाता है जिससे एक समाज का विकास हो, व्यक्ति का समाज के प्रति कर्तव्यबोध हो तथा व्यक्ति को समाज के प्रति दायित्वबोध हो जिससे वह राष्ट्र के अंगभूत घटक[25] (संघ की प्रार्थना में अपने लिए सम्बोधन) के समान जीवन यापन करे व आचरण करे। जिस आचरण पालन से चित्त में शान्ति का अनुभव हो, ऐसे सदाचरण को सदाचार (शील) कहते हैं अच्छे और बुरे आचरण करने के मूल में जो उन आचरणों को करने को प्रेरणा देने वाली एक प्रकार की भीतरी शक्ति होती है, उसे चेतना कहते हैं। वह चेतना ही वस्तुतः ''शील'' है। बहुत प्रसिद्ध सुभाषित है, विदेश में विद्या धन है, संकट में बुद्धि धन है, परलोक में धर्म धन है और शील सर्वत्र ही धन है।[26]

शील का महत्व समझाने हेतु शाखा में गीत, सुभाषित (उदाहरण उपरोक्त), अमृत वचन आदि का वाचन होता ही है। इसके इतर संघ कार्य की शैली ही कुछ ऐसी है कि इस शील–स्फुरण भी स्वयंसेवकों में होता है। शील केवल चरित्र से बढ़कर बहुत कुछ है। स्वच्छ्ता का अवलम्बन, समाजानुकूल वस्त्र–विन्यास, सरल–व्यवस्थित जीवन जीना, मितव्ययिता, मित–स्मित सम्भाषण, कनिष्ठ–वरिष्ठानुसार व्यवहार, आदि यह सब शील के अंतर्गत संस्कार हैं जो प्रतिदिन की शाखा , गृह सम्पर्क तथा वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के व्यवहार से स्वयंसेवक सहजता से ग्रहण करते हैं।

इसी सन्दर्भ में दत्तोपन्त जी, श्री गुरुजी की माताजी से प्राप्त व्यवहारसूत्र का विवरण करते लिखते हैं कि स्वयंसेवक को कपड़े धोना, प्रेस करना, गृहकार्य में सहायता करना, रसोई बनाना, भोजन परोसना, विद्युत वायरिंग, विद्युत उपकरणों की तांत्रिक जानकारी , सब प्रकार के वाहन चलाना, प्रथमोपचार जैसे सूक्ष्म से सूक्ष्म समाज–व्यवहार का अभ्यास होना चाहिए।[27] इसीसे स्पष्ट होता है आचरण से सम्बद्ध होने के कारण शील की परिधि बहुत वृहद है।

श्रुतम्

प्रार्थना की पंक्तियों **"श्रुतम् चौव यत्कण्टकाकीर्ण मार्गम् , स्वयम् स्वीकृतम् नः सुगम् कारयेत्"** में दुरूह मार्ग युक्त धर्म संस्थापन का कठिन लक्ष्य प्राप्त करने हेतु "श्रुतम्" यानि ज्ञान भी ईश्वर से मांगा गया है। स्वयंसेवकों से शाखा में बोधकथा, गीत आदि "स्मरण" कर वाचन करने का आग्रह रहता है। कार्यक्रम आदि में स्वयंसेवक बौद्धिक भी देते हैं जिसे लौकिक भाषा में भाषण कहते हैं। बौद्धिक के उपरान्त ताली न बजाने की परम्परा भी संस्कार है कि यह वाक्य प्रशंसा या ज्ञान के अभिमान को पुष्ट करने के लिए नहीं हैं अपितु जानकारी को श्रुतम् में परिवर्तित करने हेतु हैं। एक कार्यकर्ता के अध्ययन व अनुभव से संघटन कार्य, संघ–कार्य लाभान्वित हो। एक बड़े सैन्य अधिकारी ने जब श्रीगुरुजी से पूछा संघ में कौन सी विशेष शिक्षा मिलती है, तो उनका उत्तर था केवल खेलने और गीत गाने की।[28] गीत स्वरयुक्त शब्द–संयोजन हैं, अतः केवल बुद्धि ही नहीं भावनाओं को भी झंकृत करते हैं और बोधवाक्य के लिए क्रियाशील होने को स्वयंसेवक उद्यत हो जाते हैं। चरम–बौद्धिकता के स्थान पर सरल व्यावहारिक ज्ञान का संस्कार शाखा का ध्येय होता है जिससे समरस यानि जाति–वर्ण के भेद से मुक्त ध्येय की ओर अग्रसर अनुशासित व्यष्टि–समष्टि समाज का निर्माण हो। ये समरसता का संस्कार किसी दार्शनिक शास्त्रार्थ के स्थान पर गीत बौद्धिक सुभाषित से कितनी सहजता व सरलता से हो जाता है इसका एक उदाहरण है गांधी जी

द्वारा वर्धा में संघ के शिविर का अवलोकन। गांधीजी ने शिविर की सम्पूर्ण व्यवस्था देखने के बाद वर्धा के संघचालक जी से पूछा यहाँ कितने हरिजन हैं? उत्तर में संघचालक जी ने कहा उन्हें इसकी जानकारी नहीं। गांधीजी द्वारा व्यक्तिगत पूछने पर पता चला वहाँ सभी वर्णों के स्वयंसेवक आपस में भोजन आदि से लेकर खेल कूद में सब मिल जुल कर आनंद से भाग ले रहे थे।[29]

न्याय शास्त्र में लौकिक ज्ञान की श्रेणी में बाह्य व मनस दो उप–श्रेणियाँ हैं। बाह्य ज्ञान तो शब्द, स्पर्श, रूप रस गंध आदि हैं जो पाँच ज्ञानेंद्रियों के विषय हैं, किन्तु मनस ज्ञान है जो मन में उत्पन्न होता है जैसे हर्ष, पीड़ा, विषाद आदि।[30] संघ के शिविरों, कार्यक्रमों में जब जातिभेद मुक्त साङ्घिकता का दर्शन होता है तो यह समरसता का मनस–ज्ञान होता है तथा उसकी उपादेयता का अनुभव होता है जब हिन्दु धर्म के ऊपर किसी भी बाहरी आघात का डट कर विरोध करने के लिए सभी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय आदि एकजुट हो जाते हैं।

ऊग्र वीरव्रत

"परम् साधनम् नाम वीरव्रतम्" – ध्येय प्राप्ति के लिए साहस से निरन्तर गति करते हुए किसी भी सीमा को पार कर जाना वीरव्रत है। वीरव्रत की आवश्यकता लक्ष्य और ध्येय दोनों में रहती है। तात्कालिक परिस्थितियों मे किसी असाध्य व दुष्कर कार्यसन्धान हेतु भी वीरव्रत की उतनी ही आवश्यकता रहती है जितनी जीवन के ध्येय की ओर अग्रसर रहने में। प्रोफेसर ए एन बाली की पुस्तक "नाऊ इट कैन बी टोल्ड" तथा माणिक चन्द्र वाजपेयी व श्रीधर पराड़कर की पुस्तक "ज्योति जला निज प्राण की "में 1947 के समय विभाजन की विभीषिका में स्वयंसेवकों के ऐसे ही वीरव्रत के असंख्य उदाहरण हैं जब मृत्यु या किसी अन्य हानि की चिन्ता से मुक्त संघ के कार्यकर्ता हिन्दु भाई बहिनों की रक्षा हेतु कार्यरत एकाकी संगठन था। प्रोफेसर बाली कहते हैं, "मैं पंजाब के विभिन्न जिलों के अनेक जाने माने कांग्रेसी नेताओं के नाम गिना सकता हूँ जिन्होंने अपने कुटुम्बियों की रक्षा के लिए "खुलेआम" संघ की सहायता ली और ऐसी किसी भी पुकार को अनसुना नहीं किया गया"। ऐसा भी हुआ जब संघ के लोगों ने मुस्लिम महिलाओं और बच्चों को हिन्दू मुहल्लों से निकाल कर सुरक्षित अवस्था में लाहौर मुस्लिम लीग के शरणार्थी–केन्द्रों तक पहुंचाया। ऐसा ही एक उदाहरण श्री गुरुजी का भी है जब विभाजन के कालखण्ड में सितम्बर 1947 में अतिवृष्टि के कारण जालन्धर से आठ किलोमीटर पर स्थित चहेडु में उफनती नदी पर रेल की पटरी झूल रही थी और यातायात ठप्प पड़ा था। ऐसे में श्री गुरुजी फुर्ती से पटरी पर संभलते हुए पुल पार कर गए।[31]

इसके बाद कश्मीर के विलय के समय स्वयंसेवकों का साहस हो, पुर्तगाली शासन से गोवा मुक्ति आंदोलन हो, चीनी आक्रमण के समय स्वयंसेवकों द्वारा सेना का सहयोग व दिल्ली का यातायात नियन्त्रण हो या चाहे प्रकृतिक त्रासदियों में आन्ध्र का 1977 का चक्रवात हो या सन् 2013 में उत्तराखण्ड में केदारनाथ की बाढ़ हो अथवा ऐसे असंख्य उदाहरणों से संघ के स्वयंसेवकों ने वीरव्रत का उदाहरण प्रस्तुत किया।[32]

ध्येयनिष्ठा

"एक जीवन एक ध्येय"[33], श्री गुरुजी के इस वाक्य से ही स्पष्ट है कि एकमेव ध्येय हेतु अचल गति से कार्यरत, अडिग व अविचल कार्यकर्ता की अपेक्षा संघ में रहती है। श्रीमद्भगवद्गीता में सात्विक कर्ता की व्याख्या श्री कृष्ण करते हैं, आसक्ति छोड़ा हुआ, खुद अपनी बड़ाई न करने वाला, धैर्य व उत्साह से युक्त, फल–लाभ होने न होने से हर्ष–विषाद में न पड़ने वाला कर्ता सात्त्विक कहा जाता है।[34] इसी श्लोक को श्री गुरुजी भी संघ के कार्यकर्ता के लिए आदर्श मानते थे। सम्भवतः इसी कारण प्रार्थना की पंक्ति **तदन्तः स्फुरत्वक्षया ध्येयनिष्ठा** में ध्येयनिष्ठा को इंगित किया गया है।

श्री जयप्रकाश नारायण वैसे प्रारम्भ में संघ के विरोधी थे। कालान्तर में संघ की कार्यशैली के कारण वे संघ के निकट आए और मन के पूर्वाग्रह छूट गए। ध्येयनिष्ठा से जुड़ा एक उदाहरण जेपी और संघ से जुड़ा आता है, जब वे एक बार संघ के कार्यकर्ताओं की बैठक में सम्मिलित हुए। निश्चित पद्धति से कार्यकर्ता अपना परिचय करवा रहे थे, जिसमें नाम, व्यवसाय, पता तथा संघ से जुड़ने का वर्ष (संघायु) बता रहे थे तो बैठक के बाद जेपी ने कहा कि वे हतप्रभ थे कि इतने वर्षों से ये कार्यकर्ता केवल एक शाखा का ही कार्य कैसे कर रहे हैं। यह है ध्येयनिष्ठा का संस्कार जो वरिष्ठ स्वयंसेवक व प्रचारक के जीवन से अन्य समाज व स्वयंसेवकों पर पड़ता है। संघ के संस्कारों को श्री गुरुजी ने दो वाक्यों में गागर में सागर के समान व्याख्यायित किया, जिसके परिणाम के रूप में शरीर शक्तिमान तथा अन्तःकरण शीलवान हो, कर्म–अकर्म तथा चारों ओर की परिस्थिति का ठीक ठीक आंकलन करवाने वाला ज्ञान हो। निर्भयता, निःशंकता तथा वीरता को जन्म देने वाले ध्येय का अखण्ड चिन्तन, नित्य अपने हृदय में होता रहे ।

निष्कर्ष

यद्यपि एक व्यक्ति के जीवन में माता–पिता व गुरुजन संस्कारों के प्रथम स्रोत हैं, किन्तु मानवीय मूल्यों के बालक के जीवन में केवल माता–पिता आदि पर ही निर्भरता नहीं होनी चाहिए। इस पर भी गत एक सहस्र वर्षों में भारती जन–मानस में जो परिवर्तन हुआ है, उसे देखते हुए अन्तर्मुखी आध्यात्मिक हिन्दु व्यष्टि के लिए सामाजिक कर्तव्यबोध हेतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने चमत्कारिकयोगदान दिया है।

संघ की कार्यशैली में व्यक्ति की सात्विकता पर बल दिया गया है और इसी के साथ उसे समाजोपयोगी प्रशिक्षण भी दिया गया है। उपभोक्तावाद, औद्योगीकरण, नगरीकरण भौतिकवाद युक्त वर्तमान सामाजिक परिवेश में संस्कारों के महत्व की ओर अधिक चिन्तन वैश्विक स्तर पर हुआ है किन्तु शाखा जैसी विशिष्ट सर्वसमावेशी पद्धति के ही आधार पर संघ व्यक्ति परिवर्तन के अपने कार्य में सन् 1925 से निरपवाद रूप से जुटा हुआ है। प्रार्थना के शब्दों में जिन संस्कारों की ओर इस शोध पत्र में इंगित किया गया है उन्हीं गुणों के विस्तार में अनुशासन, प्रसिद्धि पराङ्गमुखता, लोकसंग्रह, कर्तव्य परायणता, साहस, आदि को मानना चाहिए। व्यक्ति का संस्कारित होना प्राथमिक रूप से आवश्यक है, किन्तु समाज के संस्कार का कार्य

भी संघ ने अत्यावश्यक माना है। कहना पड़ेगा कि व्यक्ति व समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, अतः एक के बिना दूसरे का उत्थान सम्भव ही नहीं है। अतः ऐसे सुसंस्कारित व्यक्ति की संकल्पना संघ ने की है जो समाज को शक्ति प्रदान करे। भारत के सन्दर्भ में कह सकते हैं ऐसे संस्कारित हिन्दु का निर्माण हो जो संगठित शीलवान विश्वगुरु भारत का उद्‌भव हो जिससे समस्त विश्व आधिभौतिक व आध्यात्मिक रूप से लाभान्वित हो। श्री गुरुजी बहुधा एक श्लोक उद्धृत करते थे **शिवो भूत्वा शिवम् यजेत**।। यानि शिव का यजन पूजन शिव होने में है। इसी प्रकार संघ के कार्यकर्ता की परिणति संस्कारित होने में ही संस्कार–पुञ्ज होने में ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ 24,53,64,101*
2. *श्री गुरुजी समग्र संकलन समिति, श्री गुरुजी दृष्टि और दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवाला नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 249*
3. *शाखा सुरभि, सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवाला नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 10*
4. *http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%A8%E0%A4%AF%E0%A4%A8 retrieved on 15/10/2016*
5. *संस्कारी नाम स भवति यस्मिन्जाते पदर्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य, शबर, 3 /1 /3 http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B0 retrieved on 12/10/ 2016*
6. *योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्तः – तंत्रवार्तिक http://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B0 retrieved on 12/10/ 2016*
7. *संस्कारों हि गुणन्तराधानमुच्यते http://hindi.awgp.org/gayatri/AWGP_Offers/Literature_Life_Transforming/Books_Articles/Personality/sanskaro retrieved on 12/10/ 2016*
8. *साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः तृणम् न खादन्नपि जीवमानः तद्‌भागधेयम् परमम् पशूनाम् । (भर्तृहरि कृत नीतिशतकम् 12) http://sanskritdocuments.org/doc_z_misc_major_works/niiti.pdf page 4 , retrieved on 15/10/201*
9. *दत्तोपन्त ठेंगड़ी, कार्यकर्ता, भारत विचार साधना प्रकाशन, पुणे, 2011, पृष्ठ 163*
10. *श्री रमेश पतंगे, मैं मनु और संघ, अर्चना प्रकाशन, 2003, पृष्ठ 37*
11. *श्री गुरुजी और युवा – श्री अधीश कुमार पृष्ठ 4 http://www-golwalkarguruji-org/download/books/hi/Shri_Guruji_Aur_Yuva-pdf*
12. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन,संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ 26*
13. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004 पृष्ठ 112*
14. *द्विधा भजये मप्येवम् ण नमेयम् तु कस्यचित् । एष मे सहजो दोषरू स्वभावो दुरतिक्रमः ।। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण 6–36–11, http://www.valmikiramayan.net/utf8/yuddha/sarga36/yuddha_36_frame.htm*
15. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ 10*
16. *रंगा हरि, धर्म और संस्कृति,*
17. *दत्तोपन्त ठेंगड़ी, कार्यकर्ता, भारत विचार साधना प्रकाशन, पुणे, 2011, पृष्ठ 140*
18. *श्री गुरुजी और युवा – श्री अधीश कुमार पृष्ठ 9 http://www-golwalkarguruji-org/download/books/hi/Shri_Guruji_Aur_Yuva-pdf*
19. *शाखा सुरभि सुरुचि प्रकाशन केशव कुञ्ज झण्डेवालानई दिल्ली 110055 सन् 2010 पृष्ठ 62*
20. *"Hindu&Muslim Tension: Its Cause and Cure"] Young India] 29/5/1924; reproduced in M-K-Gandhi: The Hindu&Muslim Unity] p-35&36-*
21. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ 193*
22. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ 198*
23. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004, पृष्ठ 191*
24. *ना.ह.पालकर, डॉक्टर हेडगेवार चरित्र, लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, लखनऊ, 2004,पृष्ठ 337*
25. *शाखा सुरभि, सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवाला नई दिल्ली, सन् 2010, पृष्ठ 10*
26. *विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः। परलोके धनं धमर्रू शीलं सर्वत्र वै धनम्।। Subhāşitas for the Sangha Shakha page& 15 at http://sanskritdocuments-org/doc_z_misc_subhaashita/Subhashita-pdf*
27. *दत्तोपन्त ठेंगड़ी, कार्यकर्ता, भारत विचार साधना प्रकाशन, पुणे, 2011, पृष्ठ 156*
28. *माधव सदाशिव गोलवलकर 'श्री गुरुजी', कल्पवृक्ष, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 110*
29. *माधव सदाशिव गोलवलकर 'श्री गुरुजी', कल्पवृक्ष, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 111*
30. *Chandradhar Sharma, A Critical Survey of Indian Philosophy, Motilal Banarasi Dass Publishers Private Limited, Delhi, 2016] Page 196*
31. *हो.वे.शेषाद्रि , कृति रूप संघ दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, झण्डेवाला, नई दिल्ली, 1989, पृष्ठ 190*
32. *http://rss.org/timeline.aspx*
33. *M-S Golwalkar Bunch of Thoughts Third Edition ebook Page 345 http://www-rss-*

org/Encyc/2015/4/7/334_03_46_30_Bunch_of_Thoughts-pdf

34. *मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः। सिद्धयसिद्धयो र्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।।18।। 26 श्रीमद्भगवद्गीता http://www.bhagavad-gita.org/Gita/verse-18-25.html*